जिसके पिता ने लिखी सत्यनारायण कथा, उसके 3 बेटों ने 'इज्जत लूटने वाले' अंग्रेज को मारा और चढ़ गए फाँसी पर

आज अगर कोई कहे कि घर में पूजा है, तो ये माना जा सकता है कि "सत्यनारायण कथा" होने वाली है। ऐसा हमेशा से नहीं था। दो सौ साल पहले के दौर में घरों में होने वाली पूजा में सत्यनारायण कथा सुनाया जाना उतना आम नहीं था। हरि विनायक ने कभी 1890 के आस-पास स्कन्द पुराण में मौजूद इस संस्कृत कहानी का जिस रूप में अनुवाद किया, हमलोग लगभग वही सुनते हैं। हरि विनायक की आर्थिक स्थिति बहुत मजबूत नहीं थी और वो दरबारों और दूसरी जगहों पर कीर्तन गाकर आजीविका चलाते थे।

कुछ तो आर्थिक कारणों से और कुछ अपने बेटों को अपना काम सिखाने के लिए उन्होंने अपनी कीर्तन मंडली में अलग से कोई संगीत बजाने वाले नहीं रखे। उन्होंने अपने तीनों बेटों को इसी काम में लगा रखा था। दामोदर, बालकृष्ण और वासुदेव को इसी कारण कोई ख़ास स्कूल की शिक्षा नहीं मिली। हाँ ये कहा जा सकता है कि संस्कृत और मराठी जैसी भाषाएँ इनके लिए परिवार में ही सीख लेना बिलकुल आसान था। ऊपर से लगातार दरबार जैसी जगहों पर आने-जाने के कारण अपने समय के बड़े पंडितों के साथ उनका उठना-बैठना था। दामोदर हरि अपनी आत्मकथा में भी यही लिखते हैं कि दो चार परीक्षाएँ पास करने से बेहतर शिक्षा उन्हें ज्ञानियों के साथ उठने-बैठने के कारण मिल गई थी।

आज अगर पूछा जाए तो हरि विनायक को उनके सत्यनारायण कथा के अनुवाद के लिए तो नहीं ही याद किया जाता। उन्हें उनके बेटों की वजह से याद किया जाता है। सर्टिफिकेट के आधार पर जो तीनों कम पढ़े-लिखे बेटे थे और अपनी पत्नी के साथ हरि विनायक पुणे के पास रहते थे। आज जिसे इंडस्ट्रियल एरिया माना जाता है, वो चिंचवाड़ उस दौर में पूरा ही गाँव हुआ करता था। 1896 के अंत में पुणे में प्लेग फैला और 1897 की फ़रवरी तक इस बीमारी ने भयावह रूप धारण कर लिया। ब्युबोनिक प्लेग से जितनी मौतें होती हैं, पुणे के उस प्लेग में उससे दोगुनी दर से मौतें हो रही थीं। तब तक भारत के अंतिम बड़े स्वतंत्रता संग्राम को चालीस साल हो चुके थे और फिरंगियों ने पूरे भारत पर अपना शिकंजा कस रखा था।

अंग्रेजों को दहेज़ में मिले मुंबई (तब बॉम्बे) के इतने पास प्लेग के भयावह स्वरूप को देखते हुए आईसीएस अधिकारी वॉल्टर चार्ल्स रैंड को नियुक्त किया गया। उसके प्लेग नियंत्रण के तरीके दमनकारी थे। उसके साथ के फौजी अफसर घरों में जबरन घुसकर लोगों में प्लेग के लक्षण ढूँढते और उन्हें अलग कैंप में ले जाते। इस काम के लिए वो घरों में घुसकर औरतों-मर्दों सभी को नंगा करके जाँच करते। तीनों भाइयों को साफ़ समझ में आ रहा था कि महिलाओं के साथ होते इस दुर्व्यवहार के लिए वॉल्टर रैंड ही जिम्मेदार है। उन्होंने देशवासियों के साथ हो रहे इस दमन के विरोध में वाल्टर रैंड का वध करने की ठान ली।
थोड़े समय बाद (22 जून 1897 को) रानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक की डायमंड जुबली मनाई जाने वाली थी। दामोदर, बालकृष्ण और वासुदेव ने इसी दिन वॉल्टर रैंड का वध करने की ठानी। हरेक भाई एक तलवार और एक बन्दूक/पिस्तौल से लैस होकर निकले। आज जिसे सेनापति बापत मार्ग कहा जाता है, वो वहीं वॉल्टर रैंड का इन्तजार करने वाले थे मगर ढकी हुई सवारी की वजह से वो जाते वक्त वॉल्टर रैंड की सवारी को पहचान नहीं पाए। लिहाजा अपने हथियार छुपाकर दामोदर हरि ने लौटते वक्त वॉल्टर रैंड का इंतजार किया। जैसे ही वॉल्टर रवाना हुआ, दामोदर हरि उसकी सवारी के पीछे दौड़े और चिल्लाकर अपने भाइयों से कहा “गुंडया आला रे !”

सवारी का पर्दा खींचकर दामोदर हरि ने गोली दाग दी। उसके ठीक पीछे की सवारी में आग्रेस्ट नाम का वॉल्टर का ही फौजी एस्कॉर्ट था। बालकृष्ण हरि ने उसके सर में गोली मार दी, जिससे उसकी फ़ौरन मौत

हो गयी। वॉल्टर फ़ौरन नहीं मरा था, उसे ससून हॉस्पिटल ले जाया गया और 3 जुलाई 1897 को उसकी मौत हुई। इस घटना की गवाही द्रविड़ बंधुओं ने दी थी। उनकी पहचान पर दामोदर हरि गिरफ्तार हुए और उन्हें 18 अप्रैल 1898 को फाँसी दी गई। बालकृष्ण हरि भागने में कामयाब तो हुए मगर जनवरी 1899 को किसी साथी की गद्दारी की वजह से पकड़े गए। बालकृष्ण हरि को 12 मई 1899 को फाँसी दी गई।
भाई के खिलाफ गवाही देने वाले द्रविड़ बंधुओं का वासुदेव हरि ने वध कर दिया था। अपने साथियों महादेव विनायक रानाडे और खांडो विष्णु साठे के साथ उन्होंने उसी शाम (9 फ़रवरी 1899) को पुलिस के चीफ कॉन्स्टेबल रामा पांडू को भी मारने की कोशिश की, मगर पकड़े गए। वासुदेव हरि को 8 मई 1899 और महादेव रानाडे को 10 मई 1899 को फाँसी दी गई। खांडो विष्णु साठे उस वक्त नाबालिग थे इसलिए उन्हें दस साल कैद-ए-बामुशक्कत सुनाई गई।

मैंने स्कूल के इतिहास में भारत का स्वतंत्रता संग्राम पढ़ते वक्त दामोदर चापेकर, बालकृष्ण चापेकर और वासुदेव चापेकर की कहानी नहीं पढ़ी थी। जैसे पटना में सात शहीदों की मूर्ती दिखती है, वैसे ही चापेकर बंधुओं की मूर्तियाँ पुणे के चिंचवाड़ में लगी हैं। उनकी पुरानी किस्म की बंदूकें देखकर जब हमने पूछा कि ये क्या 1857 के सेनानी थे? तब चापेकर बंधुओं का नाम और उनकी कहानी मालूम पड़ी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम को अहिंसक साबित करने की जिद में शायद इनका नाम किताबों में शामिल करना उपन्यासकारों को जरूरी नहीं लगा होगा। काफी बाद में (2018) भारत सरकार ने दामोदर हरि चापेकर का डाक टिकट जारी किया है।

बाकी इतिहास खंगालिएगा भी तो चापेकर के किए अनुवाद से पहले, सत्यनारायण कथा के पूरे भारत में प्रचलित होने का कोई पुराना इतिहास नहीं निकलेगा। चापेकर बंधुओं को किताबों और फिल्मों आदि में भले कम जगह मिली हो, धर्म अपने बलिदानियों को कैसे याद रखता है, ये अगली बार सत्यनारायण की कथा सुनते वक्त जरूर याद कर लीजिएगा। धर्म है, तो राष्ट्र भी है!

साभार- https://hindi.opindia.com/ से